Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ

अंबिका कुमारी
पीएचडी-शोधार्थी
हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विवि वर्धा,
महाराष्ट्र,भारत।

सारांश– सुरेन्द्र वर्मा के उपरोक्त चारों उपन्यास मध्यवर्गीय जीवन-संघर्ष की महागाथा हैं। मध्यवर्गीय जीवन-संघर्ष के दौरान एक मनुष्य की जो परिस्थितियाँ होती हैं, उसका सजीव व जीवंत चित्र उपन्यासकार ने खींचा है। साहित्यिक पारंपरिक मूल्यों की चुनौतियों के बावजूद उन्होंने पुरुष-वेश्या और यौन-संबंध जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों को अपने उपन्यासों में जगह देकर बड़ी निर्भीकता दिखाई है। उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन के विविध पक्षों व भावों के यथार्थ तथा मार्मिक चित्रण के साथ-साथ उसके जीवन पर उपभोक्तावादी संस्कृति के पड़ने वाले प्रभावों व चुनौतियों की ओर भी सार्थक संकेत किया गया है। चारों उपन्यास-कथाओं के चारित्रिक पात्र सामयिक हों या ऐतिहासिक, यथार्थ हों या काल्पनिक; वे तमाम पात्र प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मध्यवर्गीय जीवन-संघर्ष से आबद्ध हैं और कई जगह ये पात्र जीवन की आनेवाली चुनौतियों से दो-दो हाथ करते हुए नज़र आते हैं। निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय मध्यवर्गीय समाज और जीवन-संघर्ष की जितनी विडंबनाएँ व जटिलाताएँ हैं, उसे वर्मा जी ने हूबहू अपने उपन्यासों में बड़ी सार्थकता और सफलता के साथ अभिव्यक्त किया है।

मुख्य शब्द – सुरेन्द्र वर्मा, उपन्यास, मध्यवर्गीय जीवन-संघर्ष, महागाथा, सजीव व जीवंत, साहित्यिक।

साठोत्तर हिंदी कथा साहित्य के विकास में कथाकार सुरेन्द्र वर्मा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वे हिंदी के विरले रचनाकार हैं जिन्होंने नाटक और उपन्यास दोनों विधाओं में सार्थक लेखन किया और इसमें सफलता भी प्राप्त की। असाधारण रचनात्मकता के कारण उन्हें हिंदी नाट्य तथा कथा जगत में बेहद लोकप्रियता मिली। गौरतलब है कि उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरुआत नाट्य लेखन से की और नाटककार के रूप में प्रतिष्ठा भी अर्जित की। उन्होंने अपने जीवन का काफी समय एन. एस. डी. (National School of Drama) में व्यतीत किया, जिसका सीधा प्रभाव इनके नाटकों के साथ-साथ उपन्यासों पर भी दिखता है। मिसाल के तौर पर इनके प्रसिद्ध उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' पठनीय है, जिसके परिवेश का अधिकतर भाग एन. एस. डी. से संबद्ध है। भले ही सुरेन्द्र वर्मा को नाटककार के रूप में अधिक प्रतिष्ठा मिली हो, किंतु उन्होंने उपन्यास-लेखन के माध्यम से हिन्दी कथा-जगत में महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेप किया। उनके चार महत्त्वपूर्ण उपन्यास- 'अंधेरे से परे' (1980), 'मुझे चाँद चाहिए' (1993), 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' (1998), तथा 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' (2010) उल्लेखनीय हैं। उनके सारे उपन्यासों की कथा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से मानव-जीवन का वर्तमान और जीवंत प्रतिबिंब प्रस्तुत करती है। दरअसल उनके उपन्यासों में दर्ज मध्यवर्गीय जीवन वर्तमान मनुष्य के मनोभावों, अंतर्द्वंदों, परिवर्तनों, जटिलताओं तथा विडंबनाओं के साथ-साथ मानवीय संघर्षों को बखूबी उद्घाटित करता है। इसमें कोई दो मत नहीं है कि उनके सभी उपन्यासों में प्रारंभ से अंत तक वर्तमान मनुष्य के जीवन-संघर्ष की महागाथा है।

उपन्यास के क्षेत्र में सुरेन्द्र वर्मा का पदार्पण 1980 ई. में 'अंधेरे से परे' के प्रकाशन से हुआ। यह उपन्यास सामाजिक समस्याओं, पारिवारिक विघटन, बेरोजगारी, मध्यवर्गीय परिवार के सामने उत्पन्न आर्थिक संकट, इस संकट से परिवार में होने वाले लड़ाई-झगड़े और तनाव तथा उन झगड़ों का घर के बच्चों पर पड़ने वाले प्रभाव आदि को ध्यान में रखकर लिखा गया है। इस उपन्यास की शुरुआत होती है मिसेज माथुर के परिवार से। इनके परिवार के माध्यम से ही आधुनिक युग की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों और इन परिस्थितियों से प्रभावित व्यक्ति की मनोवृत्तियों को दिखाया गया है। इस उपन्यास में मिसेज माथुर के परिवार के माध्यम से आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार के टूटने-बिखरने की स्थिति का चित्रण किया गया है, जिसके पीछे का बड़ा कारण है- पारिवारिक मूल्यों का विघटन और उपभोगतावादी संस्कृति।

मिसेज माथुर का एक बेटा है गुलशन, जो बेरोजगार है। मिसेज माथुर की एक बेटी है बिन्दो, जो अपने पति और बेटे के साथ अपनी माँ के घर रहती है। गुलशन इस उपन्यास का नायक है। उसके माध्यम से लेखक ने मध्यवर्गीय परिवार की बेरोजगारी से उत्पन्न उस मनःस्थिति का मार्मिक चित्रण किया है जिसके कारण कथानायक गुलशन आत्महत्या की ओर अग्रसर होता है, साथ ही बेरोजगारी खत्म होने और आर्थिक स्थिति ठीक होने के बाद की उस मनःस्थिति को भी लेखक ने रेखांकित किया है। ऐसे हालात में व्यक्ति की जिजीविषा और जीवन के प्रति आग्रह बढ़ना स्वाभाविक लगता है। गुलशन की बहन बिन्दो के माध्यम से आधुनिक नारी का चित्रण हुआ है जो अपने पति को छोड़कर दूसरे व्यक्ति के साथ रहने लगती है। इसमें विज्ञापन, मॉडल, फैशन, उपभोगतावादी संस्कृति आदि उत्तर औपनिवेशिक प्रवृतियाँ विद्यमान हैं। परंपरा से स्वीकृत पारिवारिक संरचना को तोड़ कर अपनी मर्जी के अनुरूप स्वतंत्र परिवार रूपायित करने में सामयिक समाज उत्सुक दिखाई पड़ते हैं। उपन्यासकार ने इस उपन्यास में उत्तर औपनिवेशिक परिप्रेक्ष्य में उपजे पारिवारिक जीवन के नये स्वरूप को अभिव्यक्त किया है और ये तमाम पारिवारिक परिदृश्य उपन्यास-कथा में मध्यवर्गीय समाज के बदलते स्वरूप के रूप में अंकित हैं।

उपन्यास की कथा में जब जित्तन को उसकी पत्नी बिंदो सफाई देते हुए नौकरी के संदर्भ में दो टूक कहती है तो इससे दोनों के कमजोर रिश्ते के कारणों की पोल खुल जाती है। बिंदो जित्तन से स्पष्ट कहती है कि "क्या सोचकर देख लूँ? इतनी बड़ी कंपनी की असिस्टेंट मैनेजरी के बाद चार सौ रूपल्ली के लिए दर-दर भटकना...! हमें तो लतिका के डैडी का अहसान मानना चाहिए, वरना तुम्हारी जो हालत है, उसमें कोई ऐसी नौकरी भी नहीं देखा।"[1] ऐसे में एक मध्यवर्गीय समाज के संबंध की जो विडम्बना और अंतर्कलह है, वह पूरी स्पष्टता से प्रकट हो जाता है। मध्यवर्गीय समाज की पत्नियाँ पति के जीवन के किसी भी कमजोर पक्ष पर किस तरह बेबाकी से अपनी बात कह सकती हैं, वह यहाँ पूरी तरह उजागर है। आत्मनिर्भरता का यह महत्त्वपूर्ण पक्ष आज के समाज के प्रत्येक मध्यवर्गीय परिवार के चरित्र को सीधे-सीधे उद्वेलित करता है। इतना ही नहीं, बिंदो पति की समस्याओं को समझने की कोशिश भी करती है। तमाम मतभेदों-झगड़ों के बावजूद वह अपने पति जित्तन को जीवन में आशा और उत्साह की ओर लगातार संकेत भी करती नज़र आती है। एक जगह वह कहती है कि "तुम इस तरह क्यों सोचते हो? ... तुम हमेशा बुरे परिणाम के लिए अपने को तैयार कर लेते हो। कल की उत्सुकता की प्रतीक्षा करते हो। हालांकि सच्चाई यह है कि उम्र के जिस चढ़ाव पर तुम हो, उसमें सिर्फ आशा और उत्साह की उमंगे होनी चाहिए।"[2] यह बात अलग है कि बिंदो पति को समझाने के बावजूद इस कार्य में वह असफल होती है, यह एक प्रकार से पति-पत्नी के रिश्ते का यथार्थ द्वंद्व है। यह भी गौरतलब है कि जित्तन अपने को असफल और निसहाय समझता है, उसके जीवन में कई चुनौतियाँ हैं; इसके बावजूद वह पत्नी के प्रति पति के कर्तव्यबोध को कमजोर होने देना नहीं चाहता है। इसलिए वह अपनी पत्नी बिंदो से सवाल भी करता है। पारिवारिक आर्थिक अक्षमता के बावजूद वह सदा अपने अस्तित्व की तलाश करता नज़र आता है। वह बिंदो से एक जगह कहता है कि "ये दिन मैंने किस तनाव में काटे हैं, यह जानती हो तुम? तुम्हें पिछले हफ्ते में एक मिनट का समय नहीं मिला कि मुझे फोन कर लो! ... चौबीस घंटे में तुम्हें एक मिनट भी अकेला समय नहीं मिला!"[3] उपन्यास में इस तरह के अनेक संवाद ऐसे हैं जिनमें भारतीय समाज के

मध्यवर्गीय जीवन का जीवंत दास्तान बयां है। निसंदेह, भारतीय मध्यवर्गीय समाज की जितनी विडंबनाएँ व जटिलाताएँ हैं, उसे वर्मा जी ने इस उपन्यास में बड़ी सार्थकता और सफलता से उकेरने का सफल प्रयास किया है।

उपर्युक्त उपन्यास के बाद 1993 ई. में सुरेन्द्र वर्मा का बेहद प्रसिद्ध और उत्तर-आधुनिक कहा जाने वाला उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' प्रकाशित हुआ। इसमें मध्यवर्गीय समाज की तमाम विडंबनाओं व संघर्षों को बखूबी उद्घाटित किया गया है। वर्मा जी के इस बहुचर्चित उपन्यास का कैनवास इतना विशाल है कि इसमें शाहजहाँपुर के रूढ़िग्रस्त जीवन से लेकर दिल्ली, मुंबई जैसे महानगरीय जीवन का यथार्थ बड़ी बारीकी के साथ रेखांकित हुआ है। इस उपन्यास की कथावस्तु दो रूपों में विभाजित है- पहली उपन्यास की मूल कथा तथा दूसरी सामानांतर कथा। मूल कथा के अंतर्गत उपन्यास की केन्द्रीय पात्र वर्षा वशिष्ठ के जीवन से जुड़ी कथा है तथा सामानांतर कथा के अंतर्गत मुख्य कथा को आगे बढ़ाने के अनेक प्रसंगों को लिया गया है। उपन्यास के केंद्र में एक मध्यवर्गीय लड़की वर्षा वशिष्ठ है, जिसकी महत्त्वाकांक्षा अभिनेत्री के रूप में प्रतिष्ठित होने की है। अपनी इस महत्त्वाकांक्षा को वह परिवार के विरोध के बाद भी परिवार व समाज से संघर्ष करते हुए प्राप्त कर लेती है, इसीलिए कहा जाता है कि 'मुझे चाँद चाहिए' एक महत्त्वाकांक्षी कलाकार की संघर्ष-गाथा है जो मध्यवर्गीय जीवन के परिप्रेक्ष्य में दर्ज है।

इस उपन्यास में वर्षा के पिता और उसके परिवार के माध्यम से लेखक मध्यवर्गीय समाज की उस मानसिकता का चित्रण करते हैं जिसमें नाटक और रंगमंच को आज भी उपेक्षित समझा जाता है। इसमें कलाकार के व्यक्तिगत और कलात्मक जीवन में आने वाली कठिनाइयों तथा उस कठिनाइयों के कारण उत्पन्न भिन्न-भिन्न मनःस्थितियों को वर्षा और हर्ष के माध्यम से चित्रित किया गया है। वर्षा वशिष्ठ के जीवन को चित्रित करते हुए रंगमंच और सिनेमा की यथास्थिति से भी परिचित कराया गया है। दरअसल इस उपन्यास में चल रही सामानांतर दो कथाएँ आपस में इस तरह जुड़ी हुई हैं कि ये मध्यवर्गीय जीवन के अंतर्संबंध, संघर्ष और उसकी विडम्बना को बखूबी बयां करती हैं। एक तरफ वर्षा की जिंदगी और दूसरी तरफ कलाकार का जीवन-संघर्ष- इन दोनों समानांतर कथाओं के अंतर्संबंधों को देखकर ही प्रसिद्ध समीक्षक रवीन्द्र त्रिपाठी ने लिखा कि "उपन्यास जितना वर्षा की जीवनी है, उतना ही रंगमंच और सिनेमा की अंतर्कथाओं और अंतर्संबंधों का रूपक।"[4] 'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास कथा-रस के लिए ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, एक अल्पपरिचित कलाजगत के आंतरिक जीवन-संघर्ष, प्रेम, यातना, आतंक, आसक्ति, चुनौती, प्रतिस्पर्धा, द्वंद्व के मिलेजुले अनुभव चित्रण के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। तथा ये तमाम मनोभाव मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ पहलू हैं।

उपन्यास के अनेक संवाद पठनीय हैं जो मध्यवर्गीय समाज की अद्भुत जीवनगाथा प्रस्तुत करते हैं। कदाचित, इसी कारण यह उपन्यास बेहद लोकप्रिय हुआ। उपन्यास में नायिका वर्षा वशिष्ठ ब्राह्मण परिवार से है। उनके पिता संस्कृत-अध्यापक हैं। स्वाभाविक है, कथा-नायिका परंपरा और आधुनिकता के अंतर्द्वंद्व से पूरी तरह उद्वेलित है। वह परिवार की मान्यताओं से टकराती है और वह अपने सुनहले भविष्य की तलाश के लिए तत्पर है। इसलिए तो वह बिना कोई लाग-लपेट के अपने जीवन-उद्देश्य को दो टूक लहजे में स्पष्ट कर देती है- "मैं बीए कर लूँ, फिर नौकरी करूंगी।... वंश में जो नहीं हुआ, वह आगे भी न हो, यह जरूरी नहीं।"[5] वर्षा के ऐसे कई संवाद हैं जिनमें वह अपनी मुक्ति के लिए सदा संघर्षरत नज़र आती है। हर्ष की माँ व बहन को वर्षा द्वारा कहा गया यह संवाद भी बेहद विचारणीय है जो मध्यवर्गीय परिवार की स्त्री-आकांक्षा का बेजोड़ उद्घाटन करता है। बच्चे पैदा करने व उसके परवरिश के संदर्भ में वर्षा हर्ष की माँ से कहती है कि "आपसे मदद मांगी किसने है? मैं जैसी दीन-हीन पैदा हुई थी, मेरा बच्चा वैसा पैदा नहीं होगा। वह अपनी माँ के घर में मुँह में चांदी के चम्मच के साथ पैदा होगा, जैसे उसका बाप हुआ था।"[6] यहाँ एक मध्यवर्गीय प्रौढ़ स्त्री को युवा स्त्री वर्षा आत्मनिर्भरता अथवा आर्थिक मुक्ति के सवाल पर दो टूक कहती है। यहाँ एक ओर कथा नायिका वर्षा वशिष्ठ स्त्री-मुक्ति की आकांक्षा के साथ मध्यवर्गीय परिवार की तमाम मान्यताओं व परम्पराओं से टकराती प्रतीत होती है तो दूसरी ओर उसी परिवार की पारंपरिक स्त्रीवर्ग की चुनौतियों से। यह दुखद व विचारणीय है कि मध्यवर्गीय परिवार की स्त्री यदि सवर्ण हो तो वहाँ स्त्री-शोषण बेहद

भयावह और दोहरा हो जाता है। सवर्ण परिवार की स्त्रियाँ जातीय संरचना के साथ पितृसत्ता व्यवस्था से अधिक प्रभावित रहती हैं। वर्मा जी ने इस उपन्यास में इस तरह के स्त्री-चेतना के कई स्वरों को बड़ी प्रमुखता से उकेरा है जो भारतीय समाज के मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ से सम्बद्ध हैं।

'मुझे चाँद चाहिए' के बाद सुरेन्द्र वर्मा का 'दो मुर्दो के लिए गुलदस्ता' उपन्यास आया। इसमें मध्यवर्गीय समाज के युवाओं की विवशता और बेरोजगार- जैसी चुनौतियों के साथ-साथ मजबूर व्यक्ति के यौन संबंधी विविध आयामों का जीवंत व यथार्थ चित्रण हुआ है। कथा में दिल्ली के एक शोध छात्र नील माथुर और मथुरा के एक चौकीदार भोला के बहाने मुंबई के भयानक अपराध और कुत्सित सेक्स की दुनिया का चित्रण किया गया है। एक प्रकार से इसमें महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थबोध को कलात्मक ढंग से पेश किया गया है। कथानायक नील माथुर नौकरी की तलाश में मुंबई आता है, परन्तु वह वहाँ केवल एक पुरुष-वेश्या बन कर रह जाता है और अंत में मारा जाता है। इसमें मुंबई जैसे महानगर में चलने वाली आपराधिक गतिविधियों के विस्तृत विवरण के साथ-साथ काम-संबंधों का सूक्ष्म विवेचन-विश्लेषण भी किया गया है, जिसे देखकर डॉ. रामचंद्र तिवारी ने इसे कलात्मक संयम से रहित और शुद्ध व्यावसायिक प्रयोजन से लिखा गया उपन्यास माना है। वे अपनी पुस्तक 'हिन्दी का गद्य-साहित्य' में लिखते हैं कि "उपन्यास में अपराध की भयानक दुनिया के साथ समृद्ध नारियों के अतृप्त सेक्स जीवन की तुष्टि के निमित्त पुरुष-वेश्या के सेक्स-प्रसंगों के रंगीन चित्र खींचे गये हैं, वे यदि किसी हद तक सच भी हो, तो सामाजिक प्रतिबद्धता और कलात्मक संयम से रहित इस उपन्यास को लिखकर लेखक ने कौन-सी रचनात्मक उपलब्धि हासिल की है, यह समझ से परे है। निश्चय ही यह उपन्यास उपभोक्तावादी संस्कृति के दबाव में शुद्ध व्यावसायिक प्रयोजन से लिखा गया है।"[7]

तिवारी जी का यह मत पारंपरिक दृष्टि से आदर्शवादी है, जो कि पूरी तरह सही नहीं है क्योंकि साहित्यकार का दायित्त्व होता है- तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण करना, चाहे वह स्थिति अच्छी हो या बुरी। अपने इसी गुण के कारण तो साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। यह उत्तर आधुनिक समय का कड़वा सच है जो महानगरीय जीवन में व्याप्त है। सेक्स यदि मनुष्य के जीवन का अभिन्न हिस्सा है तो सेक्स-स्वरूप के यथार्थ और उससे प्रभावित मनुष्य की जिंदगी की ओर संकेत करना ईमानदार और प्रगतिशील लेखक का पहला दायित्वबोध। साथ ही वर्मा जी के उपन्यास-लेखन का लक्ष्य पाठक को सेक्स-रोमांस का अनुभव या मनोरंजन कराना नहीं है, बल्कि वह समाज को इस तरह की सच्चाई से रूबरू कराने के साथ-साथ इसकी चुनौतियों से भी आगाह कर रहे हैं। जहाँ इस उपन्यास की तिवारी जी द्वारा एकपक्षीय आलोचना का सवाल है, उसके कारणों को समझना जरूरी है। असल में, तिवारी जी उपन्यास में दर्ज नवीन सत्य को परंपरा (रूढ) की आँखों से देख-परख रहे हैं, इसीलिए वह उपरोक्त कथन का हवाला देते हुए उपन्यास की एकपक्षीय आलोचना करते हैं।

निसंदेह, यह उपन्यास अपने आप में अन्य उपन्यासों से पूरी तरह अलग और विशिष्ट है। आज तक जहाँ स्त्री-वेश्याओं पर केन्द्रित उपन्यास लिखे जाते रहे, वहीं इस उपन्यास में एक पुरुष-वेश्या के दुखद मनःस्थिति तथा दुर्गति का चित्रण हुआ है जिसका प्रतिफलन महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं के रूप में चित्रित है। कथा में अनेक ऐसे संवाद हैं जिनसे इसकी स्पष्ट और यथार्थ झलक मिलती है। नील नामक पात्र पुरुष-वेश्या का शिकार हुआ है। नील के कस्टमर बहुत ज्यादा हैं। यास्कीन, कुंतल, स्टेला, रंभा, कृष्णा, सौदामिनी, शिल्पा, पारूल, करुणा, उर्वशी, कुंतल राव- ऐसी कितनी ही स्त्रियों की आवाज़ नील के कानों में गूंजती रहती थी। नील के संदर्भ में यह संवाद बेहद उल्लेखनीय है- "मेरी बाहों में आ जाओ नील। पीछे भागती अधेर स्त्री की बेताब पुकार उसे सुनाई दी। नील अजीब भूलभुलैया में फँसा हुआ दौड़ता जा रहा था। नील मेरी बाहों में आ जाओ। ढले स्तनों और प्रथुल नितंबों वाली स्त्री ने कामुक गुहार लगाई।"[8]

जाहिर है, नील की स्थिति एक मजबूर पुरुष-वेश्या की तबाह जिंदगी की तरह हो गयी है। उपन्यास का यह कथन भी नील के जीवन के संदर्भ में उल्लेखनीय है- "नील किसी को फोन नहीं कर सकता था। और कस्टमर अपना फोन नंबर नहीं छोड़ेंगी। ... कई बार तो नील को घंटे भर

का ही नोटिस मिलता था। उन बेचारियों का दोष नहीं था, क्योंकि भेंट घर से एक-दो घंटे गायब हो जाने की सुविधा पर ही निर्भर करती थी। और कई कस्टमर इस सुविधा की जानकारी मिलते ही बेताबी से उसका नंबर घुमाने लगती थी।"[9] इस कथन से पुरुष-वेश्या की जिंदगी के यथार्थ के साथ-साथ कस्टमर के रूप में आईं तमाम स्त्रियों की मनोवृत्ति, स्थिति व मजबूरी का भी बखूबी पता चलता है। यह विचारणीय है कि नील के पास सेक्स से अतृप्त और उसके-अभ्यस्त (एडिक्टेड) स्त्रियाँ ही यौन-संबंध के लिए नहीं आती हैं, बल्कि पढ़ी-लिखी व आर्थिक सम्पन्न वर्ग की वह युवतियाँ भी आतीं हैं जो महानगरीय-नगरीय परिवार में या परिवार से अलग रहकर अकेलापन, संत्रास, घुटन और अजनबीपन की शिकार हो गयी हैं। इस प्रसंग और समस्या के अलावा कथा में सामाजिक-आर्थिक समस्याओं, निर्देशक द्वारा शोधार्थी का शोषण तथा दांपत्य जीवन में एकरसता आदि समस्याओं को बखूबी से उभारा गया है। ये समस्याएँ भी मध्यवर्गीय जीवन के वर्तमान यथार्थ हैं।

अतः कहा जा सकता है कि उपन्यास महानगरीय मध्यवर्गीय जीवन के उस अव्यक्त पक्ष को व्यक्त करने वाला उपन्यास है, जिसके यथार्थ के बारे में हम या हमारा समाज बात नहीं करना चाहते या इस पर बात करना अपनी परंपरा के खिलाफ समझते हैं।

उपर्युक्त उपन्यास के बाद 'काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से' प्रकाशित हुआ। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में लिखा गया सुरेन्द्र वर्मा का यह पहला और अकेला ऐतिहासिक उपन्यास है। उनके नाटकों की अंतर्वस्तु और पात्रों की तरह इस उपन्यास की कथावस्तु और पात्र भी ऐतिहासिक हैं, किन्तु ऐतिहासिक पात्र के माध्यम से आधुनिक जीवन के यथार्थ, अंतर्द्वंद्व और चुनौतियों को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। उपन्यास के प्रमुख पात्र कालिदास प्रसिद्ध ऐतिहासिक पात्र हैं जो आधुनिक मध्यवर्गीय समाज के प्रतीक के रूप में दर्ज है। इस उपन्यास में मौजूदा संदर्भ में एक मध्यवर्गीय कलाकार के अंतर्द्वंद्व को, उसकी रचना प्रक्रिया को, सत्ता तथा प्रेम को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखा गया है। साथ ही एक कलाकार की कलात्मक महत्त्वाकांक्षा, उस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए किये गये संघर्ष तथा उस संघर्ष के परिणामस्वरूप मिली सफलता का यथार्थ चित्रण किया गया है। कालिदास अपनी इस महत्त्वाकांक्षा के कारण कलाकार रूप में तो सफल हो जाते हैं, किन्तु व्यक्ति रूप में असफल ही होते हैं। जाहिर है, आज भी ऐसे हालात मध्यवर्गीय समाज के किसी भी कलाकार के साथ घटित होता रहता है।

पाँच खंडों में विभाजित इस उपन्यास में पात्रों की संख्या बहुत है, जिसमें कालिदास, मुग्धा और राजकुमारी प्रियंगुमंजरी प्रमुख हैं; बाकी मातुल, सुन्दरदास, कीर्तिभट्ट, विद्याभास्कर, सम्राट चन्द्रगुप्त, आलोकवर्धन, धवलकीर्ति, श्वेतांग आदि गौण पात्र हैं। कालिदास कवि के रूप में वर्णित है। कुछ दिन बाद कालिदास नीलपुर के रसिक समाज में 'ऋतुसंहार' की कुछ पंक्तियों का पाठ करते हैं, जहाँ उनकी रचना में नायक-नायिका न होने, अन्तःसूत्र न होने आदि कारणों से उनकी रचना को विश्रृंखल और अराजक कह कर उनका अपमान किया जाता है। रसिक समाज द्वारा कवि को कहा गया यह वाकया यहाँ उल्लेखनीय है- "नवोदित कवि!...तुम्हारी रचना विश्रृंखल और अराजक है।"[10] रसिक समाज की इस प्रतिक्रिया से कालिदास को कठोर आघात लगता है जिसे लेखक ने निम्न कथन में वर्णित किया है- "वर्षा की रात्रि। वन में क्षत-विक्षत दौड़ रहा था कालिदास। बिना पत्तों की झाड़ियों, सूखी लताओं और नागफनी की बाड़ों को छूता, उनसे उलझता, टकराता, डगमगाता, फिसलता...साँसें तीव्र, आँखें लाल...चीत्कार के साथ वह अपने कक्ष में घुसा, पाण्डुलिपि दीवार पर दे मारी। पृष्ठ बिखर कर जहाँ-तहाँ तिरने लगे।"[11] इस कथन से रचना के कारण अपमानित कवि की उस कष्टपूर्ण और पीड़ादायक स्थिति को बखूबी समझा जा सकता है। दरअसल रचनाकार की यह मध्यवर्गीय चेतना और सामाजिक अंतर्कलह का बेजोड़ मिसाल है। पात्र ऐतिहासिक भले हो, किन्तु उपरोक्त कथनों के माध्यम से समकालीन समाज के कलाकारों व रचनाकारों के आत्मसंघर्ष को यथार्थ ढंग से उद्घाटित करने में वर्मा जी ने सफलता पायी है। कालिदास का रचनाकार के रूप में जो उपेक्षापूर्ण, अवरोधपूर्ण और तनावपूर्ण कलात्मक जीवन है, वह एक मध्यवर्गीय मनुष्य के जीवन का यथार्थ है; साथ ही कालिदास के व्यक्तिगत जीवन में भी

जो तनाव और समस्याएँ हैं, वह आधुनिक मनुष्य की जीविका की भीषण समस्याएँ हैं जो आज के मध्यवर्गीय जीवन को सर्वाधिक प्रभावित करती हैं।

उपन्यास में एक बड़ी समस्या जीविकोपार्जन की है जिसे लेकर कालिदास के मामा मातुल उन्हें दिन-रात ताना देते रहते हैं और रोज-रोज कोई-न-कोई दैनिक वृत्ति का प्रस्ताव उसके सामने रख देते हैं। ऐसा ही एक प्रस्ताव रखा शादी में बधाई गीत गाने का, जिसके लिए कालिदास जाते तो हैं किन्तु गीत गाये बिना वापस आ जाते हैं और कहते हैं- "मेरे सहित्यिक मूल्य मुझे बधाई गीत गाने की अनुमति नहीं देते। मैं सौन्दर्यबोधीय प्राचिलकों के साथ आत्माभिव्यक्ति के लिए लिखता हूँ।"[12] यहाँ यह बखूबी समझने की जरूरत है कि एक मध्यवर्गीय कलाकार किस तरह अपने सम्मान और स्वाभिमान के लिए सचेत रहता है। जीविका के कारण वह हरगिज कुछ ऐसा करना नहीं चाहता जिससे उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचे। उपरोक्त कथन में कालिदास के माध्यम से एक कलाकार की कलात्मक महत्त्वाकांक्षा और उसकी पूर्ति के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति और अदम्य साहस के साथ किये जाने वाले संघर्ष को चित्रित किया गया है। साथ ही यह भी दिखाया गया है कि कालिदास कलात्मक स्तर पर सफल और प्रतिष्ठित भले ही हो गये हो, किन्तु व्यक्तिगत जीवन में वे एक असफल व्यक्ति ही रहे। पूरे उपन्यास में एक साथ कई स्तरों पर द्वंद्व का यथार्थ चित्रण किया गया है। जैसे- परम्परावादी सोच और आधुनिक संवेदना का द्वंद्व, कला और प्रेम के बीच का द्वंद्व, कला और सत्ता के बीच का द्वंद्व आदि। ये तमाम द्वंद्व और संघर्ष मध्यवर्गीय जीवनशैली के अभिन्न पहलू हैं जिसका यथार्थ और सामयिक चित्रण सुरेन्द्र वर्मा ने किया है।

निसंदेह, सुरेन्द्र वर्मा के उपरोक्त चारों उपन्यास मध्यवर्गीय जीवन-संघर्ष की महागाथा हैं। मध्यवर्गीय जीवन-संघर्ष के दौरान एक मनुष्य की जो परिस्थितियाँ होती हैं, उसका सजीव व जीवंत चित्र उपन्यासकार ने खींचा है। साहित्यिक पारंपरिक मूल्यों की चुनौतियों के बावजूद उन्होंने पुरुष-वेश्या और यौन-संबंध जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों को अपने उपन्यासों में जगह देकर बड़ी निर्भीकता दिखाई है। उपन्यासों में मध्यवर्गीय जीवन के विविध पक्षों व भावों के यथार्थ तथा मार्मिक चित्रण के साथ-साथ उसके जीवन पर उपभोक्तावादी संस्कृति के पड़ने वाले प्रभावों व चुनौतियों की ओर भी सार्थक संकेत किया गया है। चारों उपन्यास-कथाओं के चारित्रिक पात्र सामयिक हों या ऐतिहासिक, यथार्थ हों या काल्पनिक; वे तमाम पात्र प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मध्यवर्गीय जीवन-संघर्ष से आबद्ध हैं और कई जगह ये पात्र जीवन की आनेवाली चुनौतियों से दो-दो हाथ करते हुए नज़र आते हैं। निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय मध्यवर्गीय समाज और जीवन-संघर्ष की जितनी विडंबनाएँ व जटिलाताएँ हैं, उसे वर्मा जी ने हूबहू अपने उपन्यासों में बड़ी सार्थकता और सफलता के साथ अभिव्यक्त किया है।

संदर्भ-सूची–

1. वर्मा, सुरेन्द्र. (1980). अंधेरे से परे. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस. पृष्ठ- 12.
2. वही, पृष्ठ- 38.
3. वही, पृष्ठ- 151.
4. यादव, राजेन्द्र (संपा.). हंस. नई दिल्ली: अक्षर प्रकाशन. पृष्ठ- 84.
5. वर्मा, सुरेन्द्र. (2004). मुझे चाँद चाहिए. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन. पृष्ठ- 76-77.
6. वही, पृष्ठ- 555.
7. तिवारी, डॉ. रामचन्द्र. (2016). हिंदी का गद्य-साहित्य. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन. पृष्ठ- 304
8. वर्मा, सुरेन्द्र. (1998). दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन. पृष्ठ- 136
9. वही, पृष्ठ- 118.
10. वर्मा, सुरेन्द्र. (2010). काटना शमी का वृक्ष पद्मपंखुरी की धार से. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ. पृष्ठ- 47.
11. वही, पृष्ठ- 48.
12. वही, पृष्ठ- 72.